शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जुलाई 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भारतीय संस्कृति के संरक्षण में शिक्षा की भूमिका

डॉ.अरूणा कुसुमाकर
प्राध्यापक (अर्थशास्त्र)
शासकीय संस्कृत महाविद्यालय
इन्दौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। शिक्षा मनुष्य जीवन के परिष्कार एवं विकास की कुंजी मानी गई है। शिक्षा मानव सभ्यता के विकास क्रम में संस्कृति का सोपान है। शिक्षा मानव को उसके अतीत और वर्तमान के सन्दर्भ में उसके अस्तित्व की पहचान देते हुए भविष्य का मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा सम्पूर्ण मानव जाति की सांस्कृतिक दिशा तय करती है तथा शिक्षा किसी राष्ट्र की पहचान में विवेक का गहरा रंग भर कर उसे श्रेष्ठ सांस्कृतिक राष्ट्र भी बनाती है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय संस्कृति के संरक्षण में शिक्षा के अवदान पर विचार किया गया है।

भूमिका

भारतीय चिंतन पद्धति में शिक्षा को सभी प्रकार की मुक्ति का माध्यम माना गया है । मंत्र ही है 'सा विद्यया विमुक्तये'। जीवन का अंतिम लक्ष्य सत्य की प्राप्ति है । इसके चार सोपान निर्धारित किये गए : ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम । इनमें विद्यार्थी के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होता था। इस प्रकार की शिक्षा ने नैतिकता के उच्च मापदंड समाज में स्थापित किये । इस प्रकार की शिक्षा ने भारतीय संस्कृति का रक्षण भी किया । पूर्व राष्ट्रपति डॉ..अब्दुल कलाम के अनुसार "शिक्षा वास्तविक अर्थों में सत्य की खोज है। यह ज्ञान और प्रकाश की अंतहीन यात्रा है। ऐसी यात्रा मानवतावाद के विकास के लिए नए रास्ते खोलती है।"

अध्ययन के उद्देश्य

शिक्षा व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।

शिक्षा व्यवस्थाके परिवर्तित रूप का अध्ययन करना। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के संरक्षण में शिक्षा व्यवस्था के अवदान का अध्ययन करना।

शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु उपाय प्रस्तुत करना।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं परिवर्तित शिक्षा का स्वरूप

सभ्यताओं के इतिहास का यदि उसकी संपूर्णता में अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट है कि किसी विशेष प्रकार की जीवनदृष्टि का प्रसार करने के लिए, सामाजिक ताने-बाने के स्वरूप का निर्धारण करने के लिए और इस सबकी सहायता से एक विशेष प्रकार के आर्थिक-राजनीतिक स्वार्थ-साधन के लिए सदैव शिक्षा का आश्रय लिया गया है।

शिक्षा की विषयवस्तु , पाठ्यसामग्री, अध्यापक शिक्षा व प्रशिक्षण , शिक्षा का माध्यम आदि

राजनीतिक महत्वकांक्षाओं और योजनाओं को मूर्तरूप देने के साधन बनते रहे हैं।

प्राचीन काल के स्वतन्त्र भारत में ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के आदर्शों से जुड़ी शिक्षा व्यवस्था गुरुकुलों, गोष्ठियों, मठों और विश्वविद्यालयों में राष्ट्र का निर्माण करती थीं। यहाँ साहित्य व्याकरण, धर्म, दर्शन, तर्कशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित, नक्षत्र विज्ञान, औषध विज्ञान, शल्य चिकित्सा, लेखाविधि, व्यापार, कृषि, संगीत, नृत्य तथा चित्रकला आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी। इस शिक्षा का उद्देश्य था भौतिक , शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से सम्पूर्ण राष्ट्र को सुदृढ़ रखना तथा वैयक्तिक , समाजिक और राष्ट्रीय आधार पर नैतिक मूल्यों के सुदृढ़ विचार एवं व्यवहार की पवित्रता को न केवल बनाए रखना अपितु इनका निरंतर गुणात्मक विकास करना। प्राचीन और मध्यकाल में शिक्षा ने केवल ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करने वाले संतों, विचारकों और समाज सुधारकों को ही पैदा नहीं किया अपितु ऋषि चार्वाक तथा कणाद जैसे अनीश्वरवादी भौतिक शास्त्री ऋषि और संत भी समाज को दिए। इन सबकी अपने मूल्यों और नैतिकता के उच्चतर स्तर तक प्रतिबद्धता थी।

मुगल शासन के दौरान भी शिक्षा ने राष्ट्रीय गुणों के संपोषण तथा नैतिक मूल्यों के प्रसार से अपना संबंध बनाए रखा। मदरसों के माध्यम से धर्म और नैतिकता की शिक्षा का क्रम चलता रहा। इस मूल्य आधारित शिक्षा व्यवस्था में बौद्धिक वातावरण में स्त्री-पुरूष समानता , कर्म करने की स्वतंत्रता , पूजा-अर्चना की उदार बहुलतावादी संस्कृति आदि की अवधारणा भारतीय समाज में व्यापक रूप से उपलब्ध थी। नैतिकतापूर्ण गणतांत्रिक स्वतंत्रता को बल देने वाली शिक्षा ने भारतीय समाज को सक्षम , सम्पन्न, सुसंस्कृत एवं मूल्यों पर स्थिर रहने वाला बनाया, किन्तु मैकाले ने भारत में शिक्षा-तंत्र को अपने लक्ष्य के अनुरूप ऐसा ढाला कि शीघ्र ही अनेक भारतीय बुद्धिवादी मौलिक भारतीय मूल्यों, संस्कृति, परम्पराओं और आदर्शों को हीन समझने लगे। प्रगतिवाद और तथाकथित 'वैज्ञानिक' चिंतन ने बहुत कुछ प्राचीन भारतीय मूल्यों को ध्वस्त करने का कार्य किया। शिक्षा धनोपार्जन का साधन बन गई।

आधुनिक विचारधारा में वैश्विक स्तर पर व्यक्तिवाद, पारिवारिक व सामाजिक संबंधों में अबाध स्वतंत्रता का आग्रह, कर्तव्यों की बात बिना किए हुए केवल अधिकारों पर बल कुछ ऐसे तत्व हैं जो हमारे शैक्षिक परिदृश्य पर छाए हुए हैं। जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक प्रेम संबंधों की पवित्रता, सहनशीलता त्याग की भावना , उदारता, क्षमाशीलता जैसे पारिवारिक और सामाजिक मूल्य धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं। मर्यादा, अनुशासन, औचित्य और नैतिकता के मूल्यों को पिछड़ेपन का पर्याय माना जाने लगा है तथा उनके आंशिक पालन के प्रयत्न को रूढ़िवादिता और घातक कट्टरता कहकर उसकी भर्त्सना की जाती है। चूंकि समाजदृष्टि में परिवर्तन लाने में शिक्षा की भूमिका सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण रही है। अतः शिक्षा प्रणाली एवं शिक्षा व्यवस्था में आवश्यक मूल्यों को समाहित करना आवश्यक है। विश्व के महानतम वैज्ञानिक आइंस्टीन ने भी नैतिकता के विकास को शिक्षा के सर्वप्रथम कार्य के रूप में माना है। उनके अनुसार "सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानव प्रयास है, अपने क्रियाकलापों में नैतिकता विकसित करना। हमारा आंतरिक संतुलन और हमारा अस्तित्व मात्र भी इसी पर निर्भर है। अपने क्रियाकलापों में केवल नैतिकता

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

ही जीवन को सुन्दरता तथा प्रतिष्ठा प्रदान कर सकती है। इसे जीवन की शक्ति बनाना तथा इसे स्पष्ट चेतना तक लाना ही शायद शिक्षा का सर्वप्रथम कार्य है।"

आधुनिक युग में देश के समग्र विकास हेतु नैतिकता और मूल्यों को पुष्ट करके आदर्श समाज का निर्माण करने वाली शिक्षा हेतु शैक्षिक नीति एवं पाठ्य सामग्री , शिक्षण विधि एवं प्रक्रिया, अध्यापक शिक्षा एवं प्रशिक्षण तथा शैक्षिक प्रबंधन एवं प्रशासन जैसे महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है। शिक्षा संस्थानों का उद्देश्य मानव का बहुमुखी विकास एवं उसकी बौद्धिक , भौतिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास करना होना चाहिए।

सुझाव

सर्वप्रथम सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली की समीक्षा कर नये सिरे से आज की आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के आधार पर शिक्षा प्रणाली का निर्माण किया जाना चाहिए।

शिक्षा पद्धति में प्राथमिक स्तर से नैतिक शिक्षा का अध्यापन अनिवार्य किया जाना चाहिए।

विद्यार्थियों पर अनावश्यक शिक्षा के भार को कम कर व्यावहारिक शिक्षा पर जोर दिया जाना चाहिए। जिससे विद्यार्थियों में तनाव कम हो।

शिक्षा के विकास का तात्पर्य केवल अक्षर ज्ञान तक सीमित न होकर शरीर , मन, बुद्धि तथा आत्मा के विकास अर्थात् व्यक्तित्व विकास से संबंधित होना चाहिए।

शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिससे चरित्र बल बढ़े, मानसिक बल बढ़े तथा मनुष्य स्वावलम्बी बन सके।

आज की शिक्षा पद्धति केवल सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान करती है अतः वर्तमान समय में आवश्यकता है मूल्य आधारित व्यावहारिक शिक्षा पद्धति की।

शिक्षा व्यवस्था में समान शिक्षा पद्धति एवं केन्द्र नियन्त्रित शिक्षा प्रणाली होना चाहिए।

निष्कर्ष

शिक्षा मनुष्य की आंतरिक शक्तियों का सर्वांगीण अर्थात शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा का विकास है। डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार , "शिक्षा को मनुष्य एवं समाज का निर्माण करना चाहिए।" वर्तमान शिक्षा जगत में मूल्यहीनता बढ़ी है परिणामस्वरूप नैतिकता एवं सामाजिक सरोकार का पूर्णतः अभाव है। आज का शिक्षित युवा मूल्यविहीन शिक्षा ग्रहण कर डिग्रीधारी बनकर केवल आर्थिक लाभ प्राप्त कर रहा है , किन्तु उसके जीवन में सामाजिक मूल्यों का पूर्णतः अभाव है जिसके कारण देश में विभिन्न सामाजिक समस्याएँ बहुत तेजी से बढ़ रही है। उन समस्याओं का निराकरण कानून नहीं वरन हमारे संस्कार हमारी मनोवृत्ति ही कर सकती है। अतः शिक्षा पद्धति में नैतिक मूल्यों का समावेश हर स्तर पर करना होगा जिससे मन में सृजनात्मक व स्वच्छ विचार ही स्थायी रूप से अपना घर बना सके तथा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के संरक्षण में शिक्षा व्यवस्था अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 राजपूत जगमोहन सिंह, दीक्षित राजेन्द्र शिक्षा में मूल्यों के सरोकार - 2012 किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली

2 त्यागी एवं पाठक, शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

3 दैनिक समाचार नई दुनिया इन्दौर

4 विमल जालान - 21वीं सदी में भारतीय अर्थव्यवस्था - 2008 प्रभात प्रकाशन- नई दिल्ली।